

# ***THE PAHADI AGRICULTURE E- MAGAZINE***

**Volume- 04  
Issue- 04**



# Table of Contents

## हिमालयी क्षेत्रों में ब्लूबेरी की बागवानी: उभरती संभावनाएँ एवं अवसर ..... 1

1शुभम कंडवाल, 2शिवानी सकलानी और 3अजय हेमदान

1,3शोधार्थी, वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्यानिकी और वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

2शोधार्थी, श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय देहरादून, उत्तराखंड

## Role and Importance of Beneficial Insects in Sustainable Agricultural Production Systems..... 5

Himanshu Thakur<sup>1\*</sup>, Payal Sharma<sup>2\*</sup>, Arshia Prashar<sup>2\*</sup>

1Department of Entomology, 2Department of Vegetable Science and Floriculture, CoA, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishvavidyalaya, Palampur-176 062, India

## सेब में महत्वपूर्ण मृदा जनित रोग और उनका प्रबंधन..... 10

मुकेश कुमार जुंटा, डॉ. नीलम कुमारी, डॉ. सतीश कुमार शर्मा

पादप रोगविज्ञान विभाग, डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौनी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

## केसर की वैज्ञानिक खेती..... 12

डॉ० मनोज कुमार सिंह, डॉ० हेमलता पंत, डॉ. विनी जॉन

1असिस्टेंट प्रोफेसर, 2असिस्टेंट प्रोफेसर, 1उद्यान विज्ञान विभाग, 2जन्तु विज्ञान विभाग, कृषि विभाग कुलभास्कर आश्रम पी०जी० कॉलेज, सी०एम०पी० डिग्री कॉलेज, प्रयागराज मंगलायतन विश्वविद्यालय जबलपुर, मध्य प्रदेश

## हिमाचल प्रदेश में गन्ने के कंडुआ रोग का विवरण ..... 15

अरुणेश कुमार, मीनू गुप्ता एवं सतीश कुमार शर्मा

पादप रोग विज्ञान विभाग

डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

## हिमाचल का 'हिम-भोग' (प्राकृतिक खेती से सेहत और समृद्धि का नया सवेरा) ..... 17

डॉ शैलजा शर्मा<sup>1</sup>

पर्वतीय कृषि अनुसन्धान एवं विस्तार केंद्र, सांगला, जिला किन्नौर

**Post-Harvest Management of Fruits and Vegetables: Reducing Losses and Ensuring Quality from Farm to Table ..... 20**

Arshia Prashar<sup>1\*</sup>, Payal Sharma<sup>1\*</sup>, Himanshu Thakur<sup>2\*</sup>

1Department of Vegetable Science and Floriculture, 2Department of Entomology, CoA, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishvavidyalaya, Palampur-176 062, India

**Rosemary (*Salvia rosmarinus*)- an aromatic and medicinal plant Cultivation ..... 24**

Dr. Kehar Singh Thakur

KVK Chamba, Dr. Y.S Parnar University of Horticulture & Forestry, Naudi, Solan, HP

**Night Blooming Wonder: The Secret Life of Dragon Fruit ..... 28**

Dr. Manuj Awasthi

Teaching Associate, Department of Fruit Science, Chandra Shekhar Azad University of Agriculture and Technology, Kanpur, (U.P.)

**ड्रैगन फ्रूट, मोटे अनाज व प्राकृतिक खेती ने बदली किसान की किस्मत... 32**

डा. द्वारका, अतिथि शिक्षक,

कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश

हिमालयी क्षेत्रों में ब्लूबेरी की बागवानी: उभरती संभावनाएँ एवं अवसर

<sup>1</sup>शुभम कंडवाल, <sup>2</sup>शिवानी सकलानी और <sup>3</sup>अजय हेमदान

<sup>1,3</sup>शोधार्थी, वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्योगिकी और वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

<sup>2</sup>शोधार्थी, श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय देहरादून, उत्तराखंड

**भारत में बदलती जीवनशैली**, संतुलित आहार के प्रति बढ़ती जागरूकता एवं स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों की निरंतर बढ़ती मांग के साथ ब्लूबेरी एक उच्च-मूल्य एवं संभावनाशील बागवानी फसल के रूप में उभर रही है। विश्व स्तर पर "सुपरफूड" के रूप में प्रसिद्ध यह फल एंटीऑक्सीडेंट, एंथोसायनिन, विटामिन और खनिजों से भरपूर होता है। इसमें उपस्थित पोषक तत्व शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अंतरराष्ट्रीय बाजार में बढ़ती मांग एवं उच्च आर्थिक मूल्य के कारण ब्लूबेरी एक उभरती हुई बागवानी फसल के रूप में स्थापित हो रही है, जो पोषण और आर्थिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

#### परिचय

ब्लूबेरी का वानस्पतिक नाम *वैक्सिनियम कोरम्बोसम* है, जो एरिकेसी कुल की एक महत्वपूर्ण, उच्च मूल्य वाली शीतोष्ण फसल है। इसके फल छोटे, गोल, आकर्षक एवं गहरे नीले रंग के होते हैं, जिनका स्वाद हल्का मीठा-खट्टा और पोषण मूल्य अत्यधिक होता है। इसका मूल उत्पात्ति स्थल उत्तरी अमेरिका है, जहाँ 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में वैज्ञानिक एवं संगठित रूप से इसका व्यावसायिक उत्पादन आरंभ हुआ। समय के साथ इसकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती गई और आज यह अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया तथा एशिया के अनेक शीतोष्ण क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा रही है।



भारत में विशेष रूप से उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर के उच्च हिमालयी एवं शीतोष्ण क्षेत्रों में इसकी सफल खेती की संभावनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं। इन क्षेत्रों की ठंडी और अनुकूल जलवायु इसकी बागवानी के लिए उपयुक्त मानी जाती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन और फसल विविधीकरण की बढ़ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ब्लूबेरी पर्वतीय कृषि प्रणाली के लिए एक स्थायी, टिकाऊ एवं लाभकारी विकल्प के रूप में उभर सकती है। इस प्रकार, ब्लूबेरी न केवल पोषण सुरक्षा को मजबूत करने में सहायक है, बल्कि हिमालयी क्षेत्रों की कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था को भी सशक्त और समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

#### पोषण एवं स्वास्थ्य लाभ

ब्लूबेरी को "पोषण का भंडार" कहा जाता है, क्योंकि इसमें शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व, विटामिन और खनिज संतुलित मात्रा में पाए जाते हैं। प्रति 100 ग्राम ब्लूबेरी में लगभग 84 प्रतिशत पानी और 57 किलो कैलोरी ऊर्जा होती है। इसमें लगभग 14.5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है, जो शरीर के लिए प्रमुख ऊर्जा स्रोत का कार्य करता है,

जबकि 2.4 ग्राम आहार रेशा पाचन क्रिया को बेहतर बनाने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त इसमें लगभग 0.3 ग्राम वसा एवं 0.7 ग्राम प्रोटीन भी पाया जाता है, जो संतुलित पोषण प्रदान करते हैं। ब्लूबेरी विटामिन ए, बी-समूह, सी, ई और विटामिन के का अच्छा स्रोत है, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने, त्वचा एवं आंखों के स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा हड्डियों को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खनिज तत्वों की दृष्टि से भी ब्लूबेरी अत्यंत समृद्ध फल है, जिसमें कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, आयरन, मैगनीशियम, जिंक एवं मैगनीज जैसे आवश्यक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ये सभी तत्व हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने, रक्त निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने तथा शरीर की विभिन्न जैविक क्रियाओं को संतुलित बनाए रखने में अहम भूमिका निभाते हैं।

### प्रमुख प्रजातियाँ एवं प्रकार

विश्वभर में ब्लूबेरी की अनेक प्रजातियाँ पाई जाती



हैं, जिन्हें उनकी जलवायु अनुकूलता, पौधे की वृद्धि तथा फल की गुणवत्ता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। प्रमुख प्रकारों में हाइबुश, लोबुश, रैबिटआई, एवरग्रीन, वेलवेटलीफ तथा ड्राईलैंड ब्लूबेरी शामिल हैं।

ब्लूबेरी की निम्नलिखित प्रजातियाँ इस प्रकार से हैं:

#### 1. हाइबुश ब्लूबेरी

यह विश्व में सर्वाधिक उगाई जाने वाली प्रमुख प्रजाति है, जिसके पौधे सामान्यतः 1.5 से 3 मीटर तक ऊँचे होते हैं। इसके फल आकार में बड़े,

आकर्षक और स्वादिष्ट होते हैं, जिसके कारण ताजे फल के रूप में बाजार में इसकी अत्यधिक मांग रहती है।

#### 2. लोबुश ब्लूबेरी

यह प्रजाति छोटे कद (30–60 सेमी) की झाड़ी के रूप में होती है और अत्यधिक ठंड सहन कर सकती है। इसके फल छोटे लेकिन उच्च गुणवत्ता वाले होते हैं। इसका उपयोग मुख्यतः प्रसंस्करण उत्पादों जैसे जैम, जेली, जूस के लिए किया जाता है।

#### 3. रैबिटआई ब्लूबेरी

यह प्रजाति गर्म और कम ठंड वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। इसके पौधे अधिक उच्च एवं निम्न तापमान के लिए सहनशील होते हैं और कम देखभाल में भी अच्छा उत्पादन देते हैं। भारतीय परिस्थितियों के लिए इसे सबसे उपयुक्त माना जाता है।

#### 4. एवरग्रीन ब्लूबेरी

इस प्रजाति के पौधे सालभर हरे-भरे बने रहते हैं। यह प्रजाति मुख्यतः हल्की सर्दी वाले क्षेत्रों में उगाई जाती है और सजावटी महत्व भी रखती है।

#### 5. वेलवेटलीफ ब्लूबेरी

इस प्रजाति की प्रमुख विशेषता इसकी मुलायम एवं मखमली पत्तियाँ होती हैं, जो इसे विशिष्ट पहचान प्रदान करती हैं। यह प्रजाति सामान्यतः जंगली या प्राकृतिक वनों में पाई जाती है और व्यावसायिक खेती के लिए कम प्रचलित है। यह मुख्यतः शोध कार्यों एवं जैव विविधता संरक्षण के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

#### 6. ड्राईलैंड ब्लूबेरी

यह प्रजाति अपेक्षाकृत शुष्क एवं कम नमी वाले क्षेत्रों में भी जीवित रहने की क्षमता रखती है, जो इसे अन्य प्रजातियों की तुलना में अधिक सहनशील बनाती है। हालांकि इसका व्यावसायिक महत्व सीमित है, लेकिन यह अनुसंधान एवं प्रजनन कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

#### 7. हाफ-हाई ब्लूबेरी

यह हाईबुश और लोबुश ब्लूबेरी के संकरण से विकसित की गई है, जिसमें दोनों के गुण समाहित होते हैं। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं तथा अत्यधिक ठंड सहन करने की क्षमता रखते हैं। यह प्रजाति ठंडे एवं हिमालयी क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त मानी जाती है।

भारत में विशेष रूप से लो-चिलिंग हाईबुश एवं रैबिटआई किस्मों के अनुकूलन, अनुसंधान और क्षेत्रीय परीक्षणों पर तेजी से कार्य किया जा रहा है, ताकि पर्वतीय एवं समशीतोष्ण क्षेत्रों में इसकी व्यावसायिक खेती को बढ़ावा दिया जा सके।

### जलवायु एवं मृदा

ब्लूबेरी की सफल खेती के लिए शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। इसके पौधों की संतुलित



वृद्धि, पुष्पन एवं फलन के लिए 15 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल रहता है। विभिन्न किस्मों के अनुसार ब्लूबेरी की शीत-संचयन अवधि में भिन्नता पाई जाती है, जो सामान्यतः 300 से 800 शीत-घंटों के बीच होती है। पर्याप्त शीत-संचयन अवधि कली निद्रा को तोड़ने तथा पौधों में समुचित पुष्पन एवं फलन के लिए अत्यंत आवश्यक होती है।

मृदा की दृष्टि से ब्लूबेरी हल्की अम्लीय मृदा में सर्वोत्तम वृद्धि करती है। इसके सफल उत्पादन के लिए मृदा का पीएच मान लगभग 4.5 से 5.5 के बीच होना आवश्यक है। इस सीमा से अधिक पीएच होने पर पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण प्रभावित होता है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं उपज

पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैविक पदार्थों से समृद्ध, अच्छी जल निकास वाली दोमट मृदा इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों की मिट्टियाँ स्वाभाविक रूप से अम्लीय एवं जैविक पदार्थों से समृद्ध होती हैं, जो ब्लूबेरी की खेती के लिए अत्यंत अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। अतः इन क्षेत्रों में वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाकर ब्लूबेरी की व्यावसायिक खेती को सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि एवं कृषि विविधीकरण को बढ़ावा मिल सकता है।

### आर्थिक महत्व एवं विपणन संभावनाएँ

ब्लूबेरी एक उच्च-मूल्य वाली बागवानी फसल है, जिसकी मांग महानगरों, सुपरमार्केट श्रृंखलाओं तथा प्रसंस्करण उद्योगों में निरंतर बढ़ती जा रही है। इसका उपयोग ताजे फल के रूप में उपभोग के साथ-साथ जूस, जैम, जेली, सूखे फल एवं न्यूट्रास्यूटिकल उत्पाद बनाने में व्यापक रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इस फसल की उर्वरक आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होती है, जबकि बाजार में इसका मूल्य उच्च होता है, जिसके कारण किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। साथ ही, अंतरराष्ट्रीय बाजार में बढ़ती मांग एवं निर्यात की संभावनाओं के कारण यह विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों के लिए एक लाभकारी और आकर्षक विकल्प के रूप में उभर सकती है।

### सतत विकास की दिशा में योगदान

ब्लूबेरी की खेती पर्वतीय कृषि प्रणाली में मूल्य संवर्धन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती है। यह फसल महिला एवं युवा उद्यमिता को प्रोत्साहित कर ग्रामीण आजीविका के नए अवसर सृजित करती है तथा अपेक्षाकृत कम रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता के कारण जैविक खेती के लिए भी अत्यंत उपयुक्त सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त, इसकी बढ़ती बाजार मांग एवं उच्च आर्थिक प्रतिफल किसानों की आय में स्थायी वृद्धि सुनिश्चित करते हैं। इन सभी विशेषताओं के

आधार पर ब्लूबेरी हिमालयी क्षेत्रों में एक सतत, पर्यावरण-अनुकूल एवं लाभकारी बागवानी प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की क्षमता रखती है।

### **औद्योगिकी दृष्टि से उपयोगिता**

ब्लूबेरी की खेती ढालदार क्षेत्रों में मृदा अपरदन को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि इसकी सुदृढ़ जड़ प्रणाली मिट्टी को स्थिर बनाए रखने में सहायक होती है। यह फसल जंगली जानवरों से आंशिक सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ हेज (बाड़) के रूप में भी प्रभावी रूप से उपयोग की जा सकती है। इसके आकर्षक सफेद पुष्प एवं नीले रंग के फल पर्वतीय क्षेत्रों में

भूसौंदर्यीकरण के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं, जिससे पर्यावरणीय सौंदर्य में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

### **निष्कर्ष**

हिमालयी क्षेत्रों में ब्लूबेरी की खेती भविष्य की एक संभावनाशील एवं लाभकारी बागवानी फसल के रूप में उभर रही है। यह न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक हो सकती है, बल्कि पोषण, सुरक्षा एवं कृषि विविधीकरण की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। उचित अनुसंधान, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री, वैज्ञानिक प्रबंधन तथा सुदृढ़ बाजार संपर्क के माध्यम से भारत के शीतोष्ण हिमालयी राज्यों में ब्लूबेरी उत्पादन को एक नई दिशा दी जा सकती है।



## Role and Importance of Beneficial Insects in Sustainable Agricultural Production Systems

Himanshu Thakur<sup>1\*</sup>, Payal Sharma<sup>2\*</sup>, Arshia Prashar<sup>2\*</sup>

<sup>1</sup>Department of Entomology, <sup>2</sup>Department of Vegetable Science and Floriculture, CoA, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishvavidyalaya, Palampur-176 062, India

*In agriculture, insects are often viewed as enemies responsible for crop damage and yield losses. For most farmers and consumers, the word “insect” immediately brings to mind images of pests destroying leaves, boring into fruits, or spreading diseases. This perception, however, represents only one side of a much larger and more complex ecological picture. Not all insects are harmful; in fact, many insects play a crucial and beneficial role in agricultural ecosystems. These beneficial insects act as pollinators, predators, parasitoids, decomposers, and soil builders, contributing directly and indirectly to crop productivity, food security, and environmental sustainability.*

Recognizing and conserving beneficial insects is essential for achieving sustainable agriculture in the present era of rising input costs, pesticide resistance, and environmental concerns. Beneficial insects are those that provide services which help crops grow better and healthier, either by assisting in pollination, controlling pest populations, improving soil fertility, or supporting ecological balance. These insects are nature’s own pest managers and productivity enhancers, working silently within agricultural fields. For centuries, traditional farming systems unknowingly benefited from these insects by maintaining diverse cropping patterns and avoiding excessive chemical use. However, modern intensive agriculture, with its heavy reliance on synthetic pesticides, has disrupted this natural balance, often harming beneficial insects along with target pests. One of the most important roles played by beneficial insects is pollination. Pollination is a vital biological process through which pollen is transferred from the male part of a

flower to the female part, enabling fertilization and seed formation. Many vegetable, fruit, and seed crops depend on insect pollination for successful fruit set, improved yield, and better quality. Pollinating insects such as bees, butterflies, moths, beetles, and flies visit flowers in search of nectar and pollen, unintentionally facilitating pollination. Crops such as cucurbits, tomato, brinjal, capsicum, sunflower, and many fruit crops show improved yield and uniformity when pollinated by insects. Without pollinators, crop productivity would decline sharply, affecting food availability and farmer income. Among pollinators, bees play a particularly significant role. They are highly efficient pollinators due to their body structure, foraging behaviour, and flower fidelity. Bees collect nectar and pollen to feed their colonies, visiting hundreds of flowers in a single day. This activity ensures effective pollen transfer and enhances fruit size, shape, and seed development. Decline in bee populations due to pesticide exposure, habitat

loss, and climate change has raised serious concerns worldwide. Protecting pollinators is therefore not only an environmental necessity but also an agricultural priority. In addition to pollination, beneficial insects play a major role in natural pest control. Predatory insects feed directly on crop pests, reducing their population and preventing outbreaks. Common predatory insects include ladybird beetles, lacewings, spiders, predatory bugs, and certain beetles. These predators feed on aphids, whiteflies, mites, thrips, and caterpillars that damage crops. A single ladybird beetle, for example, can consume hundreds of aphids during its lifetime, providing effective pest suppression without any cost to the farmer.

Parasitoids represent another important group of beneficial insects involved in pest control. Unlike predators, parasitoids lay their eggs on or inside the bodies of pest insects. The developing larvae feed on the host insect, eventually killing it. Parasitoids are highly specific in nature, targeting particular pest species and maintaining their population at manageable levels. This specificity makes them extremely valuable in biological control programs, as they do not harm non-target organisms or beneficial insects. Beneficial insects contribute significantly to reducing the dependence on chemical pesticides. Excessive use of pesticides has led to several problems, including pest resistance, resurgence of secondary pests, environmental pollution, and health hazards. When natural enemies are conserved and encouraged, pest populations remain under control through biological means, reducing the need for chemical interventions. This approach not only lowers production costs but also promotes safer food

and a healthier environment. Another important but often overlooked role of beneficial insects is their contribution to soil health. Insects such as beetles, ants, termites, and earth-dwelling larvae help decompose organic matter and improve soil structure. By breaking down crop residues and organic waste, they facilitate nutrient recycling and improve soil fertility. Their movement through the soil creates channels that enhance aeration, water infiltration, and root growth. Healthy soil supports healthy crops, making soil-dwelling insects an integral part of sustainable farming systems. Beneficial insects also support biodiversity within agricultural ecosystems. Diverse insect populations contribute to ecological stability and resilience against pest outbreaks and environmental stress. Monocropping and excessive pesticide use reduce insect diversity, making crops more vulnerable to pests and diseases. In contrast, diversified cropping systems that support beneficial insects are more stable and productive in the long run. Biodiversity acts as a natural insurance system, protecting crops from sudden ecological disruptions. Despite their importance, beneficial insects are often unintentionally destroyed due to indiscriminate pesticide use. Broad-spectrum pesticides do not differentiate between harmful pests and beneficial insects, leading to the destruction of natural enemies. This creates an imbalance in the ecosystem, often resulting in pest resurgence, where pest populations rebound rapidly due to the absence of their natural predators. Farmers then apply more pesticides, entering a vicious cycle that increases costs and environmental damage.

Climate change poses another challenge to beneficial insects. Changes in temperature, rainfall patterns, and extreme weather events affect insect life cycles, distribution, and survival. Pollinators may emerge earlier or later than flowering crops, disrupting pollination. Some beneficial insects may decline due to habitat loss or altered climatic conditions. Protecting and supporting beneficial insects is therefore essential for building climate-resilient agricultural systems. Farmers can play a crucial role in conserving beneficial insects through simple and practical measures. One of the most effective strategies is adopting integrated pest management practices, which combine cultural, biological, and mechanical methods with judicious use of pesticides. Avoiding unnecessary pesticide sprays, especially during flowering stages, helps protect pollinators and natural enemies. When pesticide use is unavoidable, selecting selective and low-toxicity products and applying them at appropriate times can minimize harm to beneficial insects. Maintaining crop diversity is another effective way to encourage beneficial insects. Growing a variety of crops, including flowering plants, provides food and shelter for pollinators and predators. Border crops, hedgerows, and flowering strips along field margins act as habitats for beneficial insects, supporting their survival throughout the year. Such practices enhance ecological balance while improving overall farm productivity. Organic farming systems naturally support higher populations of beneficial insects due to the absence of synthetic pesticides and fertilizers. The use of compost, green manures, and biological inputs creates a favourable environment for insects and soil organisms. Even within conventional

farming systems, incorporating organic practices can significantly improve beneficial insect populations and reduce pest pressure. Education and awareness are essential for changing the perception of insects from enemies to allies. Many farmers and consumers lack knowledge about beneficial insects and their role in agriculture. Extension programs, farmer training, demonstrations, and visual aids can help farmers identify beneficial insects and understand their importance. Once farmers recognize the value of these insects, they are more likely to adopt conservation practices and reduce pesticide misuse. Beneficial insects also have an indirect impact on human health and food safety. By reducing pesticide use, they help minimize chemical residues on food, ensuring safer consumption. They also reduce environmental contamination of soil, water, and air, contributing to public health and ecological sustainability. In this way, beneficial insects serve not only agriculture but society as a whole. Urban and peri-urban agriculture can also benefit from beneficial insects. Home gardens, rooftop gardens, and community gardens that include flowering plants attract pollinators and predators, enhancing crop productivity even in urban settings. Encouraging beneficial insects in such spaces contributes to urban biodiversity and environmental awareness among city dwellers. In the long run, sustainable agriculture depends on working with nature rather than against it. Beneficial insects represent nature's own pest management and productivity system, refined over millions of years of evolution. Ignoring or destroying these allies undermines agricultural sustainability and increases dependence on

costly external inputs. Embracing beneficial insects helps restore ecological balance and ensures stable crop production. In conclusion, beneficial insects are indispensable partners in agriculture, playing vital roles in pollination, pest control, soil health, and ecological balance. They enhance crop productivity, reduce dependence on chemical pesticides, support biodiversity, and contribute to environmental sustainability. Despite their

importance, beneficial insects are often misunderstood and neglected. Protecting and promoting these natural allies requires awareness, responsible farming practices, and a shift toward sustainable agricultural systems. By recognizing insects not merely as pests but as essential contributors to food production, farmers and society can move toward a more resilient, productive, and environmentally friendly agricultural future.

## सेब में महत्वपूर्ण मृदा जनित रोग और उनका प्रबंधन

मुकेश कुमार जुंटा, डॉ. नीलम कुमारी, डॉ. सतीश कुमार शर्मा

पादप रोगविज्ञान विभाग, डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौनी, सोलन,  
हिमाचल प्रदेश

भारत में, सेब की खेती लगभग 3,04,000 हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जिसका कुल वार्षिक उत्पादन 26,25,000 मीट्रिक टन और उत्पादकता 8.63 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर है (NHB, 2024)। हिमालयी क्षेत्र में, मुख्य रूप से जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड राज्यों में इसकी व्यावसायिक खेती की जाती है। हिमाचल प्रदेश में, सेब की खेती लगभग 1,16,240 हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जिसका वार्षिक उत्पादन 5,02,950 मीट्रिक टन और उत्पादकता 4.33 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर है (Anonymous, 2025)।

सेब कई फफूंद, जीवाणु और विषाणु रोगों से संक्रमित होता है, जिनमें से मुख्य रूप से सफेद जड़ सड़न (white root rot), सीडलिंग ब्लाइट (seedling blight), कॉलर सड़न (collar rot) जैसे कवक रोग, शिखर गांठ रोग और हेयरी रूट जैसे जीवाणु रोग मिट्टी से फैलने वाले सबसे हानिकारक रोग हैं। सेब में महत्वपूर्ण मृदा जनित रोगों के लक्षण, रोगजनक और रोग प्रबंधन कार्य विवरण निचे उल्लेखित हैं।



### सफेद जड़ सड़न (White root rot)

रोगजनक :- डेमेटोफोरा नेकेट्रिक्स

### लक्षण

रोग संक्रमण से जड़ें गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं और अधिक नमी में संक्रमित जड़ों के इर्द गिर्द सफेद रंग का कवकजाल रुई की तरह फैलता है। बाद में सफेद फफूंद का जाला भूरे रंग का होकर अस्पष्ट हो जाता है। नृतछाल ऊपर असंख्य छोटे-छोटे काले माइक्रो स्केलरोशिया बनते हैं। टहनियों की वृद्धि रुक जाती है। सड़न के फलस्वरूप पेड़ दुर्बल हो जाता है व रोगी पेड़ मर भी जाता है।

### प्रबंधन

सफेद जड़ सड़न रोग की रोकथाम के लिए बागीचों में पानी की निकासी का उचित प्रबंधन करें। प्रभावित पौधे में जुलाई-अगस्त में कार्बेन्डाजिम (0.4%) या ओरियो-फंजीन (0.02%) + कॉपर सल्फेट (0.02%) के घोल से सिंचाई करें। संक्रमित स्थलों को खाली छोड़कर मक्की की बिजाई करें। ग्रसित मिट्टी में ऑर्गेनिक पदार्थ जैसे नीम की खली, देवदार की पत्तियां या हरी खाद वाले पौधों का उपयोग भी किया जा सकता है। अम्लीय मिट्टी का चूना डालकर उपचार करें।

### सीडलिंग ब्लाइट (Seedling blight)

रोगजनक: स्कलेरोशियय रोलपसाई

#### लक्षण

रोगग्रस्त पौधे मुरझा जाते हैं व ऐसे प्रतीत होता है जैसे झुलस गए हों। पौधे के तने के पास मिट्टी की सतह पर सरसों के दाने की तरह छोटे-छोटे फफूँद के दाने (स्कलेरोशिया) नजर आते हैं। यह रोग नर्सरी व 3 से 4 वर्ष के पौधों को अधिक प्रभावित करता है।



#### प्रबंधन

नर्सरी की जगह 3-4 साल बाद बदल दें। नीम या सरसों खली (2 टन/ हैक्टेयर के हिसाब से) मिट्टी में डालें। खेत की मिट्टी को पौध लगाने से पूर्व, नर्सरी की सिंचाई करने के बाद गर्मियों के महीनों में सफेद पारदर्शी पॉलीथिन से 60 दिन तक ढक कर रखें। ऐसा करने से सूर्य की किरणों द्वारा मिट्टी का निर्जीवीकरण होता है। नर्सरी की पट्टियों को फॉर्मैलीन (5%) के घोल से भी उपचार किया जा सकता है। रोगी पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देते ही ओरियोफन्जीन (0.04%) या हैक्साकोनाजोल (0.075%) या थीरम (0.3 %) के घोल से सींचें। अत्याधिक संक्रमण होने पर रोगी पौधों को मिट्टी के साथ उखाड़ कर नष्ट करें।

### कॉलर रॉट (Collar rot)

रोगजनक :- फाईटोफथोरा कैक्टोरम

#### लक्षण

रोग का संक्रमण पौधे के जमीन से लगे तने के भाग से शुरू होकर जमीन के नीचे जड़ों में फैलता है। पौधे का तना विगलन व सड़न शुरू में अण्डाकार व कभी-कभी अनियमित आकार का होकर पेड़ के चारों ओर भूरे रंग के धब्बे के रूप में फैल जाता है।



#### प्रबंधन

कलम का जोड़ भूमि की सतह से कम से कम 18-20 सै.मी. की ऊँचाई पर होना चाहिए। सामान्य बागीचा प्रबंधन प्रक्रियाएँ जैसे कि तने के साथ पानी खड़ा न रहने देना व सही निकासी, पौधे के अवशेषों को नष्ट करना, सस्य क्रियाओं के दौरान पौधे के तने को घावों से बचाना आदि बीमारी को कम करने में सहायक होता है। पौधे के तने के चारों ओर एक फुट तक तथा 10 सै.मी. गहरी रेत की सतह पानी को खड़ा होने से रोकती है जिससे इस रोग के संक्रमण से पौधे को बचाया जा सकता है। रोग ग्रसित छाल को चाकू से हटा लें और उस स्थान पर फफूँदीनाशक पेस्ट जैसे कि बोर्डो पेंट या अन्य कॉपर आक्सीक्लोराइड पेंट लगाएँ। पेड़ के तने के चारों ओर

मैकोजेब (0.3%) के घोल से अप्रैल और अक्तूबर में सिंचाई करें।

### शिखर गांठ रोग (Crown gall)

रोगजनक :- एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमिफेशियंज

#### लक्षण

पौधे के तने तथा जड़ों पर छोटी गोलाकार गांठें बन जाती हैं, जो बाद में आकार में बड़ी और खुरदरी होकर



गहरे भूरे रंग की हो जाती है।

### हेयरी रूट (Hairy root)

रोगजनक:- एग्रोबैक्टीरियम र्हाईजोजिनज

#### लक्षण

हेयरी रूट से प्रभावित पौधे पर एक जगह से बहुत सारी छोटी-छोटी पतली तार या पतले धागों जैसी जड़ें पैदा हो जाती है जो जड़ों को झाडू जैसी शकल में बदल देती है। इस रोग से पौधे को वृद्धि में कमी आती है।

#### प्रबंधन

रोग मुक्त पौधों को अच्छी जल निकासी वाले स्थानों पर लगायें। निराई, गुड़ाई के समय पौधों की जड़ों व तने में घाव न बनने दें तथा ग्रसित नर्सरी स्थलों को बदलें व अन्य अनाज वाली फसलें लगायें। पौधे लगाने से पहले डेढ़ घण्टे तक स्वस्थ कलम किए पौधों को कॉपर सल्फेट (1%) में डुबोकर रखें।

## केसर की वैज्ञानिक खेती

डॉ० मनोज कुमार सिंह, डॉ० हेमलता पंत, डॉ. विनी जॉन

<sup>1</sup>असिस्टेंट प्रोफेसर, <sup>2</sup>असिस्टेंट प्रोफेसर, <sup>1</sup>उद्यान विज्ञान विभाग, <sup>2</sup>जन्तु विज्ञान विभाग, कृषि विभाग

कुलभास्कर आश्रम पी०जी० कॉलेज, सी०एम०पी० डिग्री कॉलेज, प्रयागराज मंगलायतन विश्वविद्यालय जबलपुर, मध्य प्रदेश

**केसर** की खेती सामान्यतया भारत में हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर एवं उत्तराखण्डों जैसी ठंडी जलवायु वाली क्षेत्रों में की जाती है। केसर विशेष रूप से मसाला वाली फसल है जो कि अपने रंगों, गुणों व खुशबू के कारण महत्त्वपूर्ण है।

### मुद्दा एवं जलवायु

- केसर की खेती के लिए बलुई व बलुई दोमट मृदा जिसका ऋ मान 6-8 हो उचित जल निकास का प्रबन्ध हो, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पर्याप्त हो उपयुक्त होती है।
- केसर के लिए ठंडी व शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिए 15-20 सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है। अधिक तापमान और उच्च आर्द्रता इस फसल के लिए हानिकारक होती है।

### बीज व बुवाई

- केसर के बुवाई के लिए बल्ब का प्रयोग करते हैं। बल्ब प्रत्येक वर्ष लगते हैं। केसर के बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर से नवम्बर के बीच का है। बुवाई के बाद हल्का पानी देना चाहिए। अधिक पानी देने से केसर की जड़ सड़ जाती है।

### खाद एवं उर्वरक

- केसर की फसल में अधिक रासायनिक खाद का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैविक खाद, गोबर की खाद, केचुएं की खाद आदि का उपयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन खाद का उपयोग अधिक नहीं करना चाहिए। अधिक नाइट्रोजन का उपयोग करने से केसर की गुणवत्ता खराब हो जाती है।

### सिंचाई

- केसर की खेती में सिंचाई आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए। अधिक सिंचाई करने से फसल को नुकसान होता है। केसर की फसल में सिंचाई हल्की व नियमित करनी चाहिए। इसमें ड्रिप इरिगेशन या स्प्रींकलर सिस्टम से सिंचाई करना उपयुक्त है। अधिक पानी से बचे क्योंकि अधिक पानी से केसर की जड़ सड़ जाती है।

### फूलों की तुड़ाई

- केसर के फूल सुबह खिलते हैं इसलिए तुड़ाई सुबह के समय करते हैं। केसर के

फूलों को सुबह-सुबह सूर्योदय के पहले तोड़ना चाहिए क्योंकि इस समय फूलों की गुणवत्ता अधिकतम होती है। फूलों को हल्के हाथ से तोड़ना चाहिए ताकि फूल की गुणवत्ता बनी रहे।

### केसर का प्रसंस्करण

- केसर के फूल तोड़ने के बाद केसर के स्टिग्मा को सावधानी से निकालकर सुखाया जाता है। इसे एक सूती कपड़े पर रखा जाता है और हल्की धूप में सुखा लें। सूखने के बाद केसर की गुणवत्ता का मूल्यांकन किया जाता है और इसे पैक कर बाजार में भेजा जा सकता है।

### उत्पादन और लाभ

- केसर के एक किलोग्राम उत्पादन से लगभग 1,50,000 – 2,00,000 फूल होती हैं। उत्पादन सामान्यतया मृदा, जलवायु और प्रबन्धन पर निर्भर करता है। केसर का औसतन उत्पादन 4–5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होता है।

### बाजार एवं बाजार मूल्य

- केसर की खेती एक उच्च मूल्य वाली फसल है। इसका मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बहुत अच्छा होता है। भारत में खास तौर जम्मू-कश्मीर में इसका उत्पादन किया जाता है। यहाँ से इसका निर्यात भी किया जाता है। किसानों के लिए केसर की खेती से अच्छे लाभ की संभावना है खासकर सही तरीके से खेती और उसका प्रसंस्करण करें।

### प्रमुख कीट व रोग-

- (1) कंद भेदक- यह कीट कंद को नुकसान पहुँचाता है। कीट केसर के कंद में छेद करके अंदर से खाता है। पौधे की वृद्धि व

विकास रूप जाता है। पत्तियाँ पीली पड़ कर सूखने लगती हैं। कंद सड़ने लगते हैं। प्रबन्धन हेतु स्वस्थ और रोगमुक्त कंद का प्रयोग करें। खेत में जल निकास की अच्छी व्यवस्था करें। कंदों के रोपण पूर्व कार्बोन्डाजिम 0.2 से उपचारित करें। जिस पोधे में कीट लगे हो उसका निकालकर नष्ट करें।

(2) थ्रिप्स- थ्रिप्स पत्तियों का रस चूसते हैं और पौधा कमजोर हो जाता है। नियंत्रण हेतु खरपतवार युक्त खेती करें। नीम तेल 3–5 मिली। लीटर का छिड़काव करें।

(3) एफिड- एफिड पत्तियों का रस चूसते हैं। पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और पत्ती पड़ जाती है पौधों की वृद्धि रुक जाती है। खेत की नियमित निगरानी करें। नीम के घोल (5 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

केसर में लगने वाला प्रमुख रोग

(1) कंद सड़न- यह रोग फफूँद द्वारा होता है। कंद नाम होकर सड़ने लगते हैं। पौधे पीला होकर सूख जाता है। उपाय हेतु रोग मुक्त कंद का चयन करें। कंदों को कार्बोन्डाजिम या केप्टान या थिरम 0.3 प्रतिशत से उपचारित करें। किसी भी दशा में खेत में जल-जमाव न हो।

(2) पत्ती झुलसा- यह रोग फफूँद द्वारा होता है। पत्तियों पर भूरे या काले धब्बे बनते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पूरा पौधा सूख जाता है। प्रबन्धन हेतु रोग ग्रसित पत्तियों हटाकर नष्ट करें। मैकोजेब 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें। खेत में वायु संचार अच्छा रखें और जल निकास का उत्तम प्रबन्ध करें।

(3) पत्ती धब्बा रोग- पत्तियों पर छोटे गोल भूरे धब्बे बनते हैं। धीरे-धीरे पत्तियाँ सुखने लगती हैं। उपाय हेतु खेत में किसी भी दशा

में जल जमाव न हो। संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें। कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3

प्रतिशत का छिड़काव करें। खरपतवार मुक्त खेती करें।

## हिमाचल प्रदेश में गन्ने के कंडुआ रोग का विवरण

अरुणेश कुमार, मीनू गुप्ता एवं सतीश कुमार शर्मा

पादप रोग विज्ञान विभाग

डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

गन्ना भारत की प्रमुख नकदी फसलों में से एक है, जिससे मुख्यतः चीनी, गुड़ और खांडसारी तैयार की जाती है। हिमाचल प्रदेश में भी गन्ने की खेती किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण साधन है। प्रदेश में गन्ने की खेती मुख्य रूप से राज्य के निचले तथा अपेक्षाकृत गर्म क्षेत्रों में की जाती है। विशेष रूप से सिरमौर, कांगड़ा, ऊना, बिलासपुर और सोलन जिलों में इसका उत्पादन अधिक पाया जाता है। इन क्षेत्रों की उपोष्णकटिबंधीय जलवायु, उपलब्ध सिंचाई सुविधाएँ गन्ने की खेती के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं, जो किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध होती है। कंडुआ रोग गन्ने की एक प्रमुख फफूंदजनित बीमारी है, यह रोग गन्ने के पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है और फसल की उपज को काफी कम कर देता है। यदि इस रोग का समय पर नियंत्रण न किया जाए तो यह गन्ने की फसल को गंभीर नुकसान पहुँचा सकता है।

रोग का कारक: यह रोग स्पोरिसोरियम स्किटामिनियम (*Sporisorium scitamineum*) नामक कवक के कारण होता है।

रोग के लक्षण:

काली चाबुक जैसी संरचना – इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण पौधे के शीर्ष भाग से निकलने वाली लंबी काली चाबुक जैसी संरचना है, जिसमें फफूंद के अनेक बीजाणु पाए जाते हैं।

पौधों का पतला और कमजोर होना – संक्रमित पौधे सामान्य पौधों की अपेक्षा अधिक पतले, कमजोर और कम विकसित दिखाई देते हैं।

पत्तियों का संकरा और सीधा होना – रोगग्रस्त पौधों की पत्तियाँ सामान्य से अधिक पतली और संकरी होती हैं तथा ऊपर की ओर सीधी खड़ी रहती हैं। अधिक टिलर (कल्ले) बनना – संक्रमित पौधों में असामान्य रूप से

अधिक संख्या में टिलर या कल्ले निकलते हैं, जिससे पौधा झाड़ी जैसा प्रतीत होता है।

वृद्धि में रुकावट – इस रोग के प्रभाव से पौधों की सामान्य वृद्धि बाधित हो जाती है और उनका आकार अपेक्षाकृत छोटा रह जाता है।

उत्पादन में कमी – इन लक्षणों के कारण गन्ने की गुणवत्ता प्रभावित होती है और कुल उपज में भी कमी आ जाती है।

**रोग के लक्षण**

रोग का जीवन चक्र: \_

बीजाणुओं का निर्माण:- संक्रमित पौधों के शीर्ष पर बनने वाली काली चाबुक जैसी संरचना, जिसे स्मट व्हिप कहा जाता है, में बहुत अधिक संख्या में काले बीजाणु बनते हैं।

बीजाणुओं का प्रसार:- जब यह स्मट व्हिप फटती है, तब इसके बीजाणु हवा के साथ उड़कर आसपास के खेतों और स्वस्थ पौधों तक पहुँच जाते हैं।

बीजाणुओं का अंकुरण:- उपयुक्त तापमान और नमी मिलने पर ये बीजाणु अंकुरित होकर धागे जैसी संरचनाएँ बनाते हैं, जिन्हें हाइफी कहा जाता है।

पौधों में संक्रमण:- ये हाइफी गन्ने के कोमल भागों या बीज-कण्डों के माध्यम से पौधे के अंदर प्रवेश कर जाती हैं और पौधे के ऊतकों में फैल जाती हैं।

रोग का विकास:- संक्रमण के बाद पौधे की सामान्य वृद्धि प्रभावित हो जाती है और कुछ समय पश्चात उसके शीर्ष से फिर से काली स्मट व्हिप दिखाई देने लगती है।



पुनः बीजाणुओं का बनना:- इस स्मट व्हिप के भीतर फिर से बड़ी मात्रा में बीजाणु बनते हैं, जो हवा द्वारा फैलकर अन्य स्वस्थ पौधों को संक्रमित कर देते हैं।

### रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ:

ताकि रोग अन्य पौधों में न फैल सके।

3. रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग:- गन्ने की ऐसी किस्मों की खेती करनी चाहिए जो कंडुआ रोग के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखती हों।

4. बीज उपचार:- रोपण से पहले बीज-कण्डों को लगभग 50°C तापमान वाले गर्म पानी में 30 मिनट तक

अनुकूल तापमान – लगभग 20 से 30°C का तापमान इस रोग के विकास और प्रसार के लिए उपयुक्त माना जाता है।

शुष्क मौसम – कम आर्द्रता और अपेक्षाकृत सूखी जलवायु कंडुआ रोग के फैलने में सहायक होती है।

संक्रमित बीज-कण्डों का प्रयोग – यदि रोपण के लिए रोगग्रस्त या संक्रमित बीज-कण्डों का उपयोग किया जाए तो रोग तेजी से फैल सकता है।

संवेदनशील किस्में – गन्ने की ऐसी किस्में जो इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, उनमें कंडुआ रोग का प्रकोप अधिक देखा जाता है।

हवा द्वारा प्रसार – तेज हवा बीजाणुओं को दूर-दूर तक फैलाने में मदद करती है, जिससे रोग का विस्तार बढ़ जाता है।

संक्रमित पौध अवशेष – खेत में पड़े रोगग्रस्त पौधों के अवशेष भी इस रोग के फैलाव का एक प्रमुख कारण बनते हैं।

रोग का प्रबंधन: गन्ने के कंडुआ रोग को नियंत्रित करने के लिए समेकित रोग प्रबंधन पद्धति अपनाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय प्रभावी माने जाते हैं:

1. स्वस्थ बीज-कण्डों का चयन:- रोपाई के लिए हमेशा प्रमाणित और रोगमुक्त बीज-कण्डों का ही चयन करना चाहिए।

2. संक्रमित पौधों को हटाना:- खेत में दिखाई देने वाले रोगग्रस्त पौधों को तुरंत उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए,

उपचारित करना या उपयुक्त फफूंदनाशक से उपचार करना लाभकारी होता है।

5. खेत की साफ-सफाई:- खेत में मौजूद संक्रमित पौधों के अवशेषों को हटाकर नष्ट करना चाहिए, जिससे रोग के स्रोत को कम किया जा सके।

6. सही फसल प्रबंधन:- उचित दूरी पर रोपण, संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग तथा अच्छी कृषि पद्धतियों को अपनाने से रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।



## हिमाचल का 'हिम-भोग' (प्राकृतिक खेती से सेहत और समृद्धि का नया सवेरा)

डॉ शैलजा शर्मा<sup>1</sup>

पर्वतीय कृषि अनुसन्धान एवं विस्तार केंद्र, सांगला, जिला किन्नौर

हिमाचल प्रदेश, जिसे हम अक्सर 'देवभूमि' के नाम से जानते हैं, आज केवल अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए ही नहीं, बल्कि कृषि के क्षेत्र में एक मौन क्रांति के लिए भी पहचाना जा रहा है। यह क्रांति है—प्राकृतिक खेती। पिछले कुछ वर्षों में, रसायनों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग ने पहाड़ों की मिट्टी को थका दिया था, लेकिन अब 'हिम-भोग' जैसे ब्रांड और सुभाष पालेकर प्राकृतिक खेती ने प्रदेश के किसानों के लिए एक नई उम्मीद जगाई है।

### रासायनिक खेती का संकट और प्राकृतिक विकल्प

एक समय था जब हरित क्रांति के नाम पर हिमाचल के सेब के बागानों और खेतों में यूरिया और कीटनाशकों का छिड़काव शान समझा जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति घटने लगी, मित्र कीट (जैसे केंचुए और मधुमक्खियां) लुप्त होने लगे और खेती की लागत आसमान छूने लगी। सबसे डरावना पहलू यह था कि इन रसायनों का असर पहाड़ी पानी के चश्मों और लोगों के स्वास्थ्य पर दिखने लगा। इसी संकट के बीच हिमाचल सरकार ने 'प्राकृतिक खेती खुशहाल किसान योजना' की शुरुआत की। इसका उद्देश्य खेती को 'जहरमुक्त' बनाना और किसान की जेब को 'खर्चमुक्त' करना था।

### 'हिम-भोग': शुद्धता की नई पहचान

प्राकृतिक खेती तो कई किसान कर रहे थे, लेकिन सबसे बड़ी चुनौती थी— 'पहचान और बाजार'। एक प्राकृतिक रूप से उगे सेब और रासायनिक सेब के बीच उपभोक्ता फर्क कैसे करे? यहीं जन्म हुआ 'हिम-भोग' ब्रांड का। 'हिम-भोग' केवल एक नाम नहीं, बल्कि हिमाचल की

शुद्धता की गारंटी है। इसके तहत सरकार उन किसानों के उत्पादों की ब्रांडिंग कर रही है जो पूरी तरह से प्राकृतिक विधि अपनाते हैं। आज शिमला की मंडियों से लेकर दिल्ली के ऑर्गेनिक स्टोर तक, 'हिम-भोग' लेबल वाले उत्पाद जैसे कुल्थी की दाल, लाल चावल, शुद्ध शहद, और पहाड़ी हल्दी की भारी मांग है। यह ब्रांड बिचौलियों को खत्म कर सीधे किसान को उसकी मेहनत का उचित मूल्य दिला रहा है।

### खेती की विधि: मिट्टी से जुड़ाव

हिमाचल में अपनाई जा रही यह विधि 'सुभाष पालेकर प्राकृतिक खेती' पर आधारित है। इसमें बाजार से खाद खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती। इसके मुख्य स्तंभ हैं: जीवामृत और बीजामृत: देसी गाय के गोबर और गोमूत्र से तैयार यह मिश्रण मिट्टी में सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ाता है।

मल्लिङ्ग (आच्छादन): मिट्टी को ढककर रखना ताकि नमी बनी रहे और खरपतवार कम हो।

वापसा: मिट्टी में हवा और नमी का सही संतुलन।

इस तकनीक का सबसे बड़ा फायदा यह है कि किसान अब 'आत्मनिर्भर' हो गया है। उसे अब खाद के कट्टों के

लिए लंबी लाइनों में नहीं लगाना पड़ता और नही कर्ज लेना पड़ता है।

### **महिला शक्ति और स्वयं सहायता समूह**

इस आंदोलन की सबसे बड़ी ताकत हिमाचल की महिलाएं हैं। प्रदेश के विभिन्न जिलों जैसे मंडी, कांगड़ा और सोलन में हजारों महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने प्राकृतिक खेती को अपनाया है। ये महिलाएं न केवल अनाज उगा रही हैं, बल्कि 'हिम-भोग' के तहत उनकेमूल्य संवर्धन (Value Addition) पर भी काम कर रही हैं। उदाहरण के लिए, अब केवल अदरक नहीं बेचा जा रहा, बल्कि अदरक का शुद्ध अचार और पाउडर बनाकर 'हिम-भोग' के जरिए बेचा जा रहा है, जिससे आय दोगुनी हो गई है।

### **चुनौतियां और भविष्य की राह**

बेशक, यह सफर इतना आसान भी नहीं है। प्राकृतिकखेती की ओर मुड़ने के शुरुआती एक-दो वर्षों में उत्पादन में थोड़ी कमी आती है, जिससे कई किसान

डर जाते हैं। साथ ही, प्रमाणीकरण की प्रक्रिया को और सरल बनाने की जरूरत है ताकि छोटे से छोटा किसान भी अपने उत्पाद को 'हिम-भोग' के तहत बेच सके। लेकिन 2026 तक के आंकड़े बताते हैं कि हिमाचल के लाखों किसान इस विधि से जुड़ चुके हैं। सरकार का लक्ष्य पूरे प्रदेश को 'प्राकृतिक खेती राज्य' घोषित करना है। यदि यह सफल होता है, तो हिमाचल न केवल भारत के लिए बल्कि पूरी दुनिया के लिए एक 'इको-फ्रेंडली' कृषि मॉडल बन जाएगा।

### **निष्कर्ष**

'हिम-भोग' और प्राकृतिक खेती का बढ़ता दायरा इस बात का प्रमाण है कि हम प्रकृति से लड़कर नहीं, बल्कि उसके साथ मिलकर ही सुखी रह सकते हैं। जब हम मिट्टी को जहरदेना बंद करते हैं, तो मिट्टी हमें 'अमृत' के समान फसल लौटाती है। हिमाचल के खेतों में आज जो हरियाली दिख रही है, वह केवल फसल की नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य औरसमृद्धि की है।



## Post-Harvest Management of Fruits and Vegetables: Reducing Losses and Ensuring Quality from Farm to Table

Arshia Prashar<sup>1\*</sup>, Payal Sharma<sup>1\*</sup>, Himanshu Thakur<sup>2\*</sup>

<sup>1</sup>Department of Vegetable Science and Floriculture, <sup>2</sup>Department of Entomology, CoA, CSK Himachal Pradesh Krishi Vishvavidyalaya, Palampur-176 062, India

*Fruits and vegetables are among the most important components of a healthy human diet, providing essential vitamins, minerals, antioxidants, and dietary fiber. With increasing awareness about nutrition and lifestyle-related diseases, the demand for fresh fruits and vegetables has risen significantly across the globe. Considerable efforts are made at the production stage to increase yields through improved varieties, better agronomic practices, irrigation, nutrient management, and pest control. However, despite achieving high productivity in the field, a substantial proportion of fruits and vegetables never reach consumers due to post-harvest losses. These losses represent not only a waste of food but also a loss of valuable resources such as land, water, labour, energy, and capital. Effective post-harvest management is therefore critical for ensuring food security, improving farmer income, maintaining quality, and reducing pressure on natural resources.*

Post-harvest losses in fruits and vegetables are generally higher than in cereal crops because horticultural produce is highly perishable. Fruits and vegetables continue to respire and undergo physiological and biochemical changes even after harvest. They are sensitive to mechanical injury, temperature fluctuations, moisture loss, and microbial spoilage. In many developing countries, post-harvest losses in fruits and vegetables range from 20 to 40 percent, and in some cases even higher. Such losses occur at different stages of the supply chain, including harvesting, handling, transportation, storage, processing, and marketing. Reducing post-harvest losses is often considered more economical and environmentally sustainable than increasing production, as it allows more food to be made available without expanding cultivated area. One of the major causes of post-harvest losses

is improper harvesting practices. Harvesting at the wrong stage of maturity can significantly affect the quality and shelf life of fruits and vegetables. Immature produce may fail to develop desirable flavour, colour, and texture, while overmature produce deteriorates rapidly and is more susceptible to mechanical damage and decay. Each fruit and vegetable crop has specific maturity indices based on factors such as size, colour, firmness, sugar content, and days after flowering. Lack of awareness, labour shortages, and market pressures often lead farmers to harvest produce at inappropriate stages, resulting in reduced market value and higher losses. Mechanical damage during harvesting and handling is another major contributor to post-harvest losses. Fruits and vegetables are often bruised, cut, or crushed due to rough handling, use of inappropriate

tools, and improper packaging. Such injuries not only reduce visual appeal but also serve as entry points for pathogens, accelerating spoilage. In many regions, produce is harvested manually without proper training, and containers used for collection and transport are poorly designed. Overfilling of bags or baskets, dropping produce from heights, and stacking heavy loads cause significant damage, particularly to soft fruits and leafy vegetables. Temperature management plays a crucial role in post-harvest quality maintenance. High temperatures increase respiration rate, water loss, and microbial growth, leading to rapid deterioration of produce. In tropical and subtropical regions, fruits and vegetables are often exposed to high ambient temperatures immediately after harvest. The absence of cooling facilities and delays in transportation further exacerbate quality loss. Pre-cooling, which involves rapid removal of field heat soon after harvest, is one of the most effective methods for extending shelf life. Techniques such as hydrocooling, forced-air cooling, and evaporative cooling can significantly reduce post-harvest losses when applied correctly.

Moisture loss is another important factor affecting post-harvest quality. Fruits and vegetables contain a high percentage of water, and even small losses can result in wilting, shrivelling, and loss of freshness. Leafy vegetables are particularly sensitive to moisture loss. Low relative humidity during storage and transport accelerates transpiration, leading to weight loss and reduced marketability. Proper packaging, maintenance of optimal humidity levels, and use of moisture-retentive materials can help reduce dehydration and preserve freshness. Post-

harvest diseases caused by fungi and bacteria account for a large share of losses in fruits and vegetables. These pathogens may infect produce in the field and remain latent until favourable conditions arise during storage and transport. Poor sanitation, high humidity, and mechanical injuries increase the risk of post-harvest decay. Common post-harvest diseases include rots, moulds, and soft decay, which spread rapidly and contaminate healthy produce. Effective disease management requires a combination of field sanitation, careful handling, clean storage environments, and, where appropriate, safe post-harvest treatments. Packaging plays a vital role in protecting fruits and vegetables from mechanical damage, moisture loss, and contamination. Traditional packaging materials such as gunny bags, bamboo baskets, and wooden crates are still widely used, but they often provide inadequate protection. Modern packaging solutions, including plastic crates, corrugated fibreboard boxes, and modified atmosphere packaging, offer better protection and help extend shelf life. Proper packaging design ensures adequate ventilation, cushioning, and stacking strength, while also facilitating efficient handling and transportation.

Transportation is a critical link in the post-harvest supply chain, especially for fruits and vegetables that must travel long distances from farms to markets. Poor road infrastructure, lack of refrigerated transport, and improper loading practices contribute to significant losses during transit. Vibrations, compression, and temperature fluctuations during transport can damage produce and accelerate deterioration. Investment in improved transportation systems, including

cold chain infrastructure, is essential for reducing losses and maintaining quality, particularly for export-oriented horticulture. Storage is another key component of post-harvest management. Appropriate storage conditions help slow down respiration, delay ripening, and reduce microbial growth. Different fruits and vegetables require specific temperature and humidity conditions for optimal storage. Cold storage is widely used to extend shelf life, but improper temperature management can lead to chilling injury in certain crops, such as bananas, mangoes, and tomatoes. Chilling injury manifests as discoloration, pitting, off-flavours, and increased susceptibility to decay. Understanding crop-specific storage requirements is essential for avoiding such problems. In many developing regions, access to cold storage facilities is limited, particularly for small and marginal farmers. As a result, farmers are often forced to sell produce immediately after harvest, leading to gluts and low prices. Low-cost storage solutions, such as evaporative cool chambers and zero-energy cool chambers, offer promising alternatives for short-term storage at the farm level. These structures use simple materials and principles of evaporative cooling to reduce temperature and maintain high humidity, thereby extending shelf life without the need for electricity.

Post-harvest handling also includes sorting and grading, which are essential for improving market efficiency and reducing losses. Sorting involves removal of damaged, diseased, or overmature produce, while grading categorizes produce based on size, weight, colour, and quality. Proper sorting and grading prevent the spread of decay and

ensure uniformity, which is important for consumer satisfaction and price realization. Unfortunately, in many traditional marketing systems, sorting and grading are either minimal or absent, leading to mixed-quality lots and higher rejection rates. Processing and value addition offer effective means of reducing post-harvest losses, especially during periods of surplus production. Fruits and vegetables can be processed into a wide range of products, including juices, pulps, purees, pickles, dried products, frozen foods, and preserves. Processing not only extends shelf life but also creates employment opportunities and increases income for farmers and rural communities. Small-scale processing units and cottage industries can play a significant role in absorbing excess produce and stabilizing prices. The role of post-harvest technology in ensuring food safety has become increasingly important. Consumers today are more concerned about the safety and quality of the food they consume. Contamination of fruits and vegetables with pathogens, pesticide residues, and heavy metals poses serious health risks. Good post-harvest practices, including proper washing, sanitation, and hygienic handling, are essential for minimizing contamination. Adoption of quality standards and certification systems helps build consumer confidence and facilitates access to premium markets. Training and capacity building are critical for improving post-harvest management. Farmers, labourers, traders, and processors need to be aware of best practices related to harvesting, handling, storage, and transportation. Extension services, farmer training programs, and demonstration projects play a key role in disseminating knowledge

and promoting adoption of improved technologies. Participatory approaches that involve farmers in problem-solving and decision-making are particularly effective in ensuring long-term impact. Policy support and institutional interventions are equally important in addressing post-harvest losses. Investment in infrastructure such as cold storage, pack houses, and refrigerated transport requires coordinated efforts from government, private sector, and cooperatives. Supportive policies that encourage private investment, promote farmer organizations, and strengthen supply chains can significantly reduce post-harvest losses. Market reforms that improve price transparency and reduce intermediaries also benefit farmers by improving returns. Climate change adds another layer of complexity to post-harvest management. Rising temperatures, erratic rainfall, and extreme weather events affect both production and post-harvest quality of fruits and vegetables. Higher temperatures accelerate spoilage, while increased humidity favours disease development. Climate-resilient post-harvest systems that emphasize

temperature management, efficient logistics, and adaptive technologies are essential for coping with these challenges. In conclusion, post-harvest management of fruits and vegetables is a critical but often neglected component of the agricultural system. High post-harvest losses not only reduce food availability but also undermine farmer income, waste natural resources, and increase environmental pressure. Improving post-harvest management offers a cost-effective and sustainable pathway to enhance food security, nutritional outcomes, and economic development. From proper harvesting and handling to efficient storage, transportation, and processing, every step in the post-harvest chain matters. A holistic approach that combines technology, infrastructure, training, and policy support is essential for minimizing losses and ensuring that fruits and vegetables reach consumers in fresh, safe, and high-quality condition. By strengthening post-harvest systems, agriculture can move closer to the goal of producing more food with fewer resources, benefiting farmers, consumers, and the environment alike.

## Rosemary (*Salvia rosmarinus*)- an aromatic and medicinal plant Cultivation

Dr. Kehar Singh Thakur

KVK Chamba, Dr. Y.S Parnar University of Horticulture & Forestry, Nauni, Solan, HP  
*The Mediterranean native rosemary with a rich history of medicinal use thrives in warm climates with moderate humidity, where it may develop into a shrub that is several feet tall. If given the right environment, rosemary grows so quickly that, if not carefully controlled, it may become a bit of a nuisance.*

*Salvia rosmarinus* is a perennial, rounded, evergreen shrub that produces the aromatic herb known as rosemary. It has tall, woody stems with thin, gray-green leaves that resemble needles. Although it can bloom at other times of the year as well, it normally blooms in late spring to early summer, producing clusters of tiny, light blue to white flowers.

Description:

<b>Common Name</b>	Rosemary
<b>Botanical Name</b>	<i>Salvia rosmarinus</i>
<b>Family</b>	Lamiaceae
<b>Plant Type</b>	Herb, perennial
<b>Size</b>	2–6 ft. tall, 2–4 ft. wide
<b>Sun Exposure</b>	Full sun
<b>Soil Type</b>	Sandy, loamy, well-drained
<b>Soil pH</b>	Acidic, neutral
<b>Bloom Time</b>	Spring, summer

### Rosemary Planting Guide

**Climate requirements:** Rosemary thrives in warm, Mediterranean-like climates, characterized by dry summers and mild winters. It prefers temperatures between 15 °C and 25 °C but can tolerate temperatures as low as -6 °C if established.

**Cold Tolerance:** Although rosemary is hardy, it can suffer damage in regions with severe frost. In colder areas, it's advisable to grow rosemary in containers or provide winter protection, such as mulching or using frost covers.

**Heat Tolerance:** Rosemary is well-adapted to withstand drought conditions, making it suitable for dry and hot regions, but prolonged exposure to intense heat without adequate water can stress the plant.

**Planting Season:** Rosemary is best planted in the spring when it has warmed up and there is no chance of frost. In general, indoor planting can be taken into consideration during frost.

**Location:** This aromatic plant thrives well in a sunny location with sharply draining soil. Make sure there aren't any nearby larger trees or plants that may shadow the rosemary. If given adequate light, rosemary may also flourish indoors or outdoors in pots.

**Support, Depth, and Spacing:** Plant your rosemary bushes at least two to three feet apart. The same depth at which they were

growing in their previous container should be used to sow seedlings and nursery plants. Generally, this crop doesn't need much of a supporting structure.

**Light:** Rosemary prefers full sunlight and requires at least 6-8 hours of direct sunlight daily. In lowlight conditions, the plant may become leggy and produce fewer aromatic oils, which are crucial for its medicinal and culinary value. Rosemary prefers direct sunlight and cannot tolerate shade. This implies that on most days, it needs at least six hours of direct sunshine. For indoor development, a south-facing window is best, although grow lights are frequently required to supplement natural light.

**Soil:** The optimal soil pH ranges from mildly acidic to neutral i.e., 6.0 to 7.0. The optimum soil for rosemary is well-draining sandy or loamy soil. It struggles to thrive in moist, thick clay soils.

**Soil Preparation:** Before planting, it is essential to ensure good drainage by amending the soil with organic matter like compost or well-rotted manure. Adding sand or gravel can also improve soil aeration.

**Container Growing:** Rosemary grows well in pots or containers, particularly in regions with cold winters. Choose containers with adequate drainage holes, and use a well-draining potting mix. Clay or terracotta pots are preferred for their breathability, which helps prevent water retention.

### **Propagation method**

1. **By Seeds:** While rosemary can be grown from seeds, this method is often slow and has a low germination rate. Seedlings may take up to three weeks to germinate and often require optimal conditions for successful growth.

Here's how to propagate rosemary from seeds:

- Sow seeds in a well-drained seed-starting mix.

- Keep the seed tray in a warm, sunny location with temperatures between 18°C and 24°C.

- Mist the soil lightly to keep it moist but not waterlogged.

- Transplant seedlings when they are large enough to handle, typically when they have at least two sets of true leaves.

2. **By Cuttings:** Propagation by cuttings is the most reliable and preferred method for growing rosemary. It ensures faster growth and maintains the characteristics of the parent plant. To propagate rosemary from cuttings:

- Select healthy, non-flowering stems about 10-15 cm (4-6 inches) long.

- Remove the lower leaves from the stem, leaving 4-6 leaves at the top.

- Dip the cut end in rooting hormone (optional) and place it in a well-draining soil mix or water.

- Keep the cutting in indirect light and maintain consistent moisture.

- Once roots form (in about 4-6 weeks), transplant the cutting to its final location.

3. **By Layering:** Another reliable method of propagating rosemary is through layering. This technique involves bending a low growing stem and pinning it to the soil while still attached to the mother plant. The pinned section will eventually develop roots, after which it can be separated and transplanted.

**Planting Time:** For outdoor planting, rosemary should be transplanted after the danger of frost has passed. In regions with a temperate climate, early spring is ideal for planting.

**Spacing:** Rosemary plants need ample space for air flow and growth. For larger varieties, spacing is plants 60 to 90 cm (24 to 36 inches) apart. Smaller varieties or container-grown rosemary can be spaced 30 to 45 cm (12 to 18 inches) apart. **Companion Planting:** Rosemary grows well with other Mediterranean herbs such as sage, thyme, and oregano. It can also

be planted alongside vegetables like carrots and beans, where it acts as a natural pest repellent due to its strong aromatic oils.

**Irrigation:** Rosemary is drought-tolerant once established and does not require frequent watering. Once established, rosemary bushes can withstand drought well, thus it is preferable to drown them as opposed to overwater them. Between watering, let the top few inches of soil dry out, and then water to evenly moisten but not flood the soil. Overwatering can lead to root rot, so it is important to allow the soil to dry out between watering.



**Young Plants:** Water young plants regularly until they are well-established.

**Mature Plants:** Water only when the top inch of soil feels dry, especially during hot weather or prolonged dry periods.

**Temperature and Humidity:** Warm temperatures and average humidity levels are ideal for this plant. The majority of rosemary types has strong heat tolerance but cannot tolerate temperatures below 30 degrees. They love environments that are bound to high temperatures.

High humidity can cause rot and fungal problems, particularly if there is insufficient air circulation around the plant.

**Fertilization:** Rosemary is not a heavy feeder, but it benefits from occasional fertilization, particularly when grown in poor soils or containers. An application of a balanced, slow-release fertilizer once or twice during the growing season is sufficient. Rosemary doesn't require much fertilizer intake. Compost added to the soil when planting can help the shrub get off to a good start. After that, using a balanced liquid fertilizer as directed on the package will keep encouraging



quality growth.

**Pollination:** It is a self pollinating crop and draw bees and other insect pollinators to the garden. When the weather is nice and the flowers are open, take indoor plants outside so that pollination can occur spontaneously.

**Pruning:** Pruning rosemary is essential for maintaining its health, promoting bushy growth, and preventing it from becoming leggy. The best time to prune rosemary is during spring or early summer when the plant is actively growing. Begin by removing any dead, damaged, or diseased branches to improve airflow and reduce the risk of pests

and diseases. For shaping, trim back about one-third of the plant's height, focusing on cutting just above a leaf node to encourage new growth. Avoid cutting into the older, woody stems, as rosemary regenerates slowly from these areas and may struggle to recover. Regular, light pruning throughout the growing season also helps maintain the plant's shape and ensures better foliage density, which is important for optimal harvests.

**Mulching:** Mulching in rosemary cultivation is a beneficial practice that helps conserve soil, moisture, regulate temperature, and suppress weed growth. To mulch rosemary, apply a 2-3 inch (5-7 cm) layer of organic mulch, such as straw, bark chips, or compost, around the base of the plant, leaving a small gap around the stem to prevent moisture buildup and potential rot. Mulching is particularly important for rosemary plants in hot climates, as it helps retain soil moisture while preventing the soil from becoming too hot. In colder regions, mulching can also offer some protection to the roots from frost during winter. Regularly check the mulch layer to ensure it remains effective, replenishing it as necessary to keep the soil healthy and weed-free.

**Harvesting of Rosemary:** Though, it grows most vigorously in the spring and summer, rosemary may be gathered practically at any time of year. And just before the plant blooms, the leaves are at their most tasty and fragrant. Use pruners to remove the 4 to 6-inch stem tips before harvesting.

**Drying and Storage:** To dry rosemary, bundle freshly harvested sprigs and hang them upside down in a warm, dry, and well-ventilated area. Once dried, strip the leaves from the stems and store them in an airtight container away from direct sunlight. Rosemary can also be frozen or used fresh in culinary and medicinal applications.

You may cook with fresh rosemary leaves or sprigs as you prefer. Alternatively, you may hang the stems upside-down in a dry, cold, well-ventilated room for a few weeks to dry them out. After the stems have dried, remove the leaves and store them in a pantry in an airtight container.

#### **Processing of Rosemary Leaves:**

The leaves are picked in the soil, and washing three times is recommended to remove the dust, followed by drying in the shade. To keep the concrete floor dry, simple areas with dried leaves and other debris require airflow from an electric fan. With 10% moisture, it is possible to obtain good-quality leaves in three days. The food's quality is to be preserved in polyethylene bags.

Rosemary, a popular aromatic herb, has long been cherished for its medicinal, culinary, and ornamental uses. Native to the Mediterranean region, rosemary is a drought tolerant, hardy plant, which makes it suitable for cultivation in various climates. As demand for rosemary continues to grow, particularly for its essential oils and health benefits, understanding its cultivation practices is essential for both small scale gardeners and commercial farmers. It has been valued for its diverse medicinal properties for centuries. Its use extends from culinary applications to traditional medicine, where it is praised for its ability to promote health and wellness. Rosemary has been used since ancient times in various cultures for its therapeutic properties. In ancient Greece, students wore rosemary garlands to enhance memory during exams, while in Roman religious ceremonies, the herb was considered sacred. In traditional European medicine, rosemary was frequently employed as a remedy for digestive issues, headaches, and joint pain.



## Night Blooming Wonder: The Secret Life of Dragon Fruit

**Dr. Manuj Awasthi**

Teaching Associate, Department of Fruit Science, Chandra Shekhar Azad University of Agriculture and Technology, Kanpur, (U.P.)

*The dragon fruit, a newly introduced superfruit in India, is regarded as a promising and remunerative fruit crop. Fruit has a highly appealing colour and mellow mouth-melting pulp with black coloured edible seed embedded in the pulp, as well as excellent nutritional properties, which attracts farmers from all over India to plant this fruit crop that originated in Mexico and Central and South America. It is a long-day plant with a lovely night-blooming blossom and hence also known as "Noble Woman" or "Queen of the Night." Strawberry Pear, Kamalam, Pithaya, Night Blooming Cereus, Belle of the Night, Cinderella Plant, and Jesus in the Cradle are some of the other names for the fruit.*

It's a plant that only grows at night (a nocturnal plant). Because of the bracts or scales on the fruit skin, the fruit is called pitaya, which literally means "scaly fruit." It has ornamental value because of its large (25 cm) flowers that bloom at night and are creamy white. There are 3 different species of dragon fruit: *Hylocereus undatus*—white flesh with pink skin, *Hylocereus polyrhizus*—red flesh with pink skin, and *Hylocereus (Selenicereus) megalanthus* – white flesh with yellow skin. Native to Mexico and the Americas, dragon fruit is now widely grown in Southeast Asia, India, Thailand, China, the United States, and Australia. In India, its cultivation has expanded since its introduction in the late 1990s, particularly in states like Karnataka, Kerala, Tamil Nadu, Maharashtra, Gujarat, Odisha, West Bengal, Andhra Pradesh, and the Andaman & Nicobar Islands, although much of the market supply is still imported. The fruit is valued for its nutritional richness, antioxidant content, and health

benefits, including its potential role in weight management and disease prevention.

### **Importance and nutritional value**

Dragon fruit is a nutrient-rich fruit providing about 264 kcal (1,100 kJ) of energy per 100 g of dry matter. It mainly contains carbohydrates ( $\approx 82\%$ ), along with small amounts of protein ( $\approx 4\%$ ), and is a good source of vitamin C and calcium, contributing significantly to daily nutritional requirements. Vitamin B1, vitamin B2, and vitamin B3, as well as protein, fat, carbohydrate, crude fibre, flavonoid, thiamin, niacin, pyridoxine, cobalamin, glucose, phenolic, betacyanins, polyphenol, carotene, phosphorus, iron and phytoalbumin are all abundant in *Hylocereus undatus*. It's rich in phytoalbumins, which are known for their antioxidant effects.

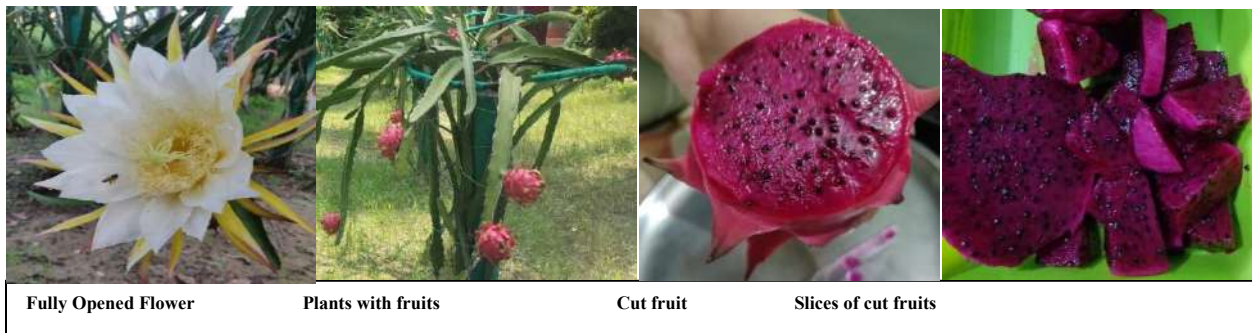
### **Uses**

- Rich in antioxidants, anti-inflammatories, and potential anti-cancer compounds.
- Helps lower cholesterol and supports weight management.

- Promotes skin health and overall well-being.
- Flowers can be used to make herbal tea.
- Flower buds are edible and used in soups and salads.
- Processed into value-added products: juice, jam, ice cream, squash, and wine.
- Serves as a natural colorant and flavoring in beverages.
- Has strong economic potential to increase farmers' profits.

### A Flower That Belongs to the Night

Dragon fruit plants are often called the “Queen of the Night,” and for good reason. Their blossoms begin to open in the



Fully Opened Flower

Plants with fruits

Cut fruit

Slices of cut fruits

evening—typically around 7–10 P.M.—reaching full glory by midnight (12-4 AM). By sunrise, they wither and close, their brief life already complete.

Each flower lasts only about 8–12 hours, making it one of the shortest-lived blooms in the plant world. When the sun dips below the horizon and most gardens fall silent, a remarkable transformation begins. Hidden among spiny green stems, the dragon fruit plant—scientifically known as *Hylocereus undatus*—awakens. Its large, luminous flowers unfurl under the cover of darkness, revealing one of nature’s most fleeting and fascinating spectacles: a bloom that lives for just a single night.

### But why such secrecy?

The answer lies in survival. As a cactus native to warm, dry regions, the dragon fruit plant avoids blooming during the heat of the day. Nighttime offers cooler temperatures and higher humidity, reducing water loss and protecting the delicate petals.

### Designed for Nocturnal Visitors

The dragon fruit flower isn’t just beautiful—it’s strategically designed. Its large, white petals reflect moonlight, making it highly visible in the dark. At the same time, it releases a strong, sweet fragrance that travels through the night air like a signal flare.

This sensory display attracts its primary pollinators:

Nectar-feeding bats

Hawk moths (also known as sphinx moths)

These nocturnal creatures play a crucial role. As they feed on nectar, they transfer pollen between flowers, enabling fruit formation. Without them, the plant would fail to produce the vibrant pink or yellow fruits we enjoy. In some regions where these pollinators are scarce, farmers even step in to hand-pollinate the flowers during the night—a delicate and time-sensitive task.

### The Bloom That Becomes a Fruit

If pollination succeeds, the wilted flower gives way to a striking fruit within a few weeks. Known for its bright skin and scale-like spikes, dragon fruit is as visually

dramatic as its bloom. Inside lies a sweet, seed-speckled pulp rich in nutrients.

Interestingly, the plant doesn't bloom just once a year. In tropical climates, it can flower in multiple cycles—sometimes 4 to 7 times annually—each cycle offering a new chance for fruit production.

### **A Sensory Experience Like No Other**

Gardeners and observers often describe the experience of witnessing a dragon fruit bloom as magical. The flowers can grow up to 30 cm to 45 cm wide, glowing white against the night sky and filling the air with a perfume-like scent.

From online gardening communities, the fascination is clear:

*“It’s night blooming and will be gone by morning... very, very fragrant.”*

*“One night only. You miss it, it’s gone forever.”*

This rarity adds to its charm—seeing one in full bloom feels like witnessing a secret.

### **More Than Just a Fruit**

While dragon fruit is widely celebrated for its health benefits and taste, its flower tells a deeper story—one of adaptation, timing, and ecological partnership. It reminds us that not all beauty seeks the spotlight; some of it thrives quietly, in the stillness of night.

**Fruit-** The fruit is a fleshy berry that is oblong in shape and about 4.5 inches (11 cm) thick, with a red or yellow skin/peel with scales and spines. Depending on the species, pulp might be pink, white, red or magenta in colour. Flowers -Although the flowers are hermaphroditic, some pitaya species and cultivars are incompatible with one another. The big, fragrant, nocturnal, bell-shaped white blossoms are incredibly spectacular, tasty and can be inches long (36 cm) and 9 inches wide

(23 cm). Cream stamens and stigmas with lobed stigmas. On the stem margin, 3 to 5 spherical buttons appear, with two to three of them developing into flower buds in around 13 days. After 16-17 days, when anthesis begins, the light green, cylindrical flower buds reach a height of around 11 inches.

Dragon fruit flowers only open for a single night. By sunrise, they're already closing, leaving a small window for nature to work its magic. Because the blooms are nocturnal, daytime insects like bees aren't the stars of this show. Instead, the real workers are:

- Nectar-feeding bats
- Nocturnal moths
- Night-active insects

These creatures play a crucial role in transferring pollen from the anthers to the stigma, allowing fruit to form. But in many regions — including Australia — these pollinators are declining. And when heavy rain hits, the problem gets worse.

### **Conclusion**

The dragon fruit's night-blooming flower is a masterpiece of nature's design—ephemeral yet purposeful, delicate yet resilient. It invites us to slow down, stay up a little later, and appreciate a world that comes alive when most of us are asleep. Because sometimes, the most extraordinary wonders happen in the dark. Dragon fruit look to have various selling factors commercially; they are appealing in shape and colour and have excellent nutraceutical properties, which attract producers from all across India. The red flesh species, *H. costaricensis*, is also high in betalains, which caters to the growing demand for antioxidant products and natural food colourants. *H. undatus* is a prospective

alternative medicine source that may act as an antioxidant, anticancer, hypocholesterolemic, cardioprotective, antibacterial and prebiotic agent. Apart from that, numerous studies on this fruit have shown that it has a wide range

of pharmacological actions. The crop is hardy and may thrive in any climate that is conducive to flowering and fruiting, as well as in soil with adequate drainage. This fruit crop needs research in different aspects.

## ड्रैगन फ्रूट, मोटे अनाज व प्राकृतिक खेती ने बदली किसान की किस्मत

**डा. द्वारका, अतिथि शिक्षक,**

कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश  
**किसान श्री बहादुर सिंह लोधी** आयु 54 वर्ष गांव टिकरिया टोला, तहसील एवं जिला दमोह, मध्य प्रदेश के निवासी हैं एवं शैक्षणिक योग्यता 12वीं पास, परिवार में कुल 7 सदस्य एवं संयुक्त परिवार के रूप में रहते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है जिसमें इन्होंने वैल्यू एडिशन के तौर पर जो मोटे अनाज होते हैं उनसे विभिन्न प्रकार की व्यंजन बनाते हैं मोटे अनाजों के सत्तू बनाते हैं स्वयं का ब्रांड बनाकर, ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए भी अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध है। प्राकृतिक खेती करते हुए इनको 5 साल हो चुके हैं इन्होंने एक नई चाय का आविष्कार किया है जिसमें अदरक, गुड़ और उसके साथ में घी मिक्स होता है जो की "रेडी टू यूज" के लिए उपलब्ध है इनके पास।

**प्रारंभिक स्थिति यह संघर्ष के द्वारा में स्थिति:**

पहले खेती घाटे की खेती हुआ करती थी कर्ज बना रहता था क्योंकि भूमि का आकार भी उतना बड़ा नहीं है। उसमें अच्छी तकनीकी से खेती न होने के कारण परिवार की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी एवं आय भी बहुत कम हुआ करती थी जिसमें उनको विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता था। कम उत्पादन, कर्ज का बना रहना, सिंचाई के लिए पानी की पर्याप्त व्यवस्था न हो पाना, बाजार के हिसाब से उत्पादन न जुटा पाना, कीट एवं रोगों का भी अधिक प्रकोप हुआ करता था एवं मौसम के प्रतिकूल प्रभाव को भी झेलने में समस्या आती थी।

**बदलाव की सोच एवं प्रेरणा:**

कृषि विज्ञान केंद्र, दमोह, मध्य प्रदेश से उन्होंने अपनी खेती को उन्नतशील बनाने के लिए प्रेरणा ग्रहण की इसके अलावा उन्होंने कई टीवी एवं रेडियो पर होने वाले जो किसानों के लिए लाभदायक प्रोग्राम होते हैं उनसे भी नई तकनीक को सीखा। नए प्रयोग

करने की जो इनके मन में विचार आया वह खेती को लाभ का धंधा बनाने के लिए एक कारगर उपाय साबित हुआ।

**अपनी गई तकनीक एवं नवाचार:**

जैविक एवं प्राकृतिक खेती होती है उस पर निर्भरता बनाने के लिए उन्होंने अच्छी नस्ल की दो भैंस हैं जो कि स्थानीय वातावरण के अनुसार बहुत अच्छा परफॉर्मेंस देती हैं। 4 देसी गाय उन्होंने पाल के रखी हैं। इसके अलावा सिंचाई की योग्य पद्धतियां हैं जिनमें खेती में सिंचाई की जो निर्भरता है वह 100 प्रतिशत स्प्रिंकलर विधि पर ही निर्भर है। उन्होंने एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत पशुपालन, मशरूम, मधुमक्खी पालन का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। वर्मीकंपोस्ट जो कि अपने खेत पर ही बनाते हैं क्योंकि पशुपालन होने के साथ-साथ डेयरी का भी काम करते हैं एवं मत्स्य पालन पर भी उन्होंने विभिन्न प्रशिक्षण लिए जिनको उपयोगी बनाने के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली पर कार्य कर रहे

हैं।



### प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहयोग:

हम बात करें प्रशिक्षण या तकनीकी सहयोग की तो दमोह, कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा उन्होंने विभिन्न विषय आधारित जिनका उपयोग एकीकृत कृषि प्रणाली में लिए करते हैं उनमें 25 से अधिक प्रशिक्षण प्राप्त किए हैं एवं जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश से वैल्यू एडिशन से संबंधित पांच प्रशिक्षण उन्होंने प्राप्त किए हैं जिसमें कुकीज, टोस्ट या ब्रेड बनाने से लेकर इससे संबंधित अन्य उत्पाद आदि शामिल है। इसके अलावा हम जिला स्तर की संस्थाओं की बात करें एनजीओ, नाबार्ड एवं आत्मा, नीति आयोग से जो विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण होते हैं उनको लेकर यह अपनी एकीकृत कृषि प्रणाली में अपना रहे हैं जिससे इनको 100 प्रतिशत लाभ मिल रहा है। यदि हम बात करें सरकारी योजनाओं की तो उद्यान विभाग एवं कृषि विभाग से जो कि जिला लेवल पर हैं उनसे उन्होंने मछली पालन, कछुआ पालन आदि से संबंधित कई प्रशिक्षण प्राप्त किए हैं जिनका उपयोग अपनी एकीकृत कृषि प्रणाली में कर रहे हैं।

**लागत उत्पादन एवं आय में बदलाव की स्थितिरू**

इनके पास कुल 6 एकड़ जमीन होने के बाद भी उनकी जो उत्पादन में वृद्धि हुई है पहले की तुलना में 80 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है यदि हम शुद्ध लाभ की हम बात करें तो पहले लगभग 70000 रुपए का मोटा अनाज बिकता था उससे मुकाबले लगभग अब 3 या 4 गुना तक लाभ सिर्फ मोटे अनाज से लाभ मिलता है।

### विपणन और मूल संवर्धन:

जिले में जो जैविक हाट या लोकल बाजार लगाई जाती हैं उसमें उन्होंने अपना पंजीकरण करके पर्याप्त कमाई का जरिया बना लिया है अपने जैविक उत्पादों से। प्रसंस्करण की हम बात करें तो जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश द्वारा प्राप्त वैल्यू एडिशन से संबंधित जो प्रशिक्षण प्राप्त किये हैं उनका उपयोग मोटे अनाजों से विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत जो भी उत्पाद बनाए जाते हैं उनका उपयोग करके जैविक हाट में विक्रय करते हैं। वे स्वयं की पैकिंग एवं ब्रांडिंग भी करते हैं जिसकी ऑनलाइन बिक्री भी उन्होंने की है जिससे निश्चित रूप से उनको लाभ मिलता है।

### सामाजिक एवं पारिवारिक प्रभाव:

यदि हम बात करें एक सफल व्यक्ति की तो निश्चित रूप से ही समाज में एवं परिवार में उसका एक अलग ही वर्चस्व होता है एवं अलग ही दृष्टि से उसे देखा जाता। यदि हम बात करें उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार की तो पहले के मुकाबले अब उनकी आर्थिक स्थिति पहले से बहुत अच्छी हुई है एवं बच्चों की शिक्षा अच्छी चल रही है। किसान श्री बहादुर सिंह लोधी गांव के अन्य किसानों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं एवं

आसपास के किसानों को भी उनसे प्रेरणा मिल रही है एवं कई प्रकार के रोजगार सृजन का कार्य यह कर रहे हैं।

#### **सम्मान पुरस्कार और पहचान:**

यदि हम बात करें पुरस्कारों या सम्मान की तो उनको जिला एवं राष्ट्रीय स्तर पर कई अवार्ड मिले हुए हैं, विभिन्न प्रकार के प्रशस्ति पत्र चाहे वह गवर्नमेंट संस्थान हो, एनजीओ, नाबार्ड या आत्मा की हम बात करें तो सभी जगह से प्रशस्ति पत्र प्राप्त हुए हैं और उनका जो सीखने का रवैया है वह बहुत ही अच्छे तरीके से प्रशिक्षण लेकर उसको अपनी समेकित कृषि प्रणाली में अपनाने के लिए वह अपने क्षेत्र में जाने जाते हैं।

#### **भविष्य की योजनाएं:**

भविष्य की योजनाओं को लेकर अभी नए-नए जो आविष्कार हो रहे हैं, जैसे ड्रैगन फ्रूट हुआ या वैल्यू एडिशन कि हम बात करें या इसके अलावा नई तकनीकी के अनुसार जो मशरूम कल्चर हुआ या जो भी खेती की आय को दोगुना, तीनगुना, चौगुना करने का जो काम कर रहे हैं वह काफी सराहनीय है

एवं निकट भविष्य में खेती को लाभ का धंधा एवं आसपास किसानों के लिए प्रेरणा का काम करेंगे एवं विभिन्न प्रकार के जो समेकित कृषि प्रणाली में साधन अपनाये जाते हैं उनके जरिए अपने गांव की एवं आसपास के गांव के किसान है या कृषि विज्ञान केंद्र स्तर पर जो प्रशिक्षण होते हैं उनमें शामिल होकर किसानों को प्रशिक्षण देते हैं एवं नई-नई तकनीक से अवगत कराते है ।

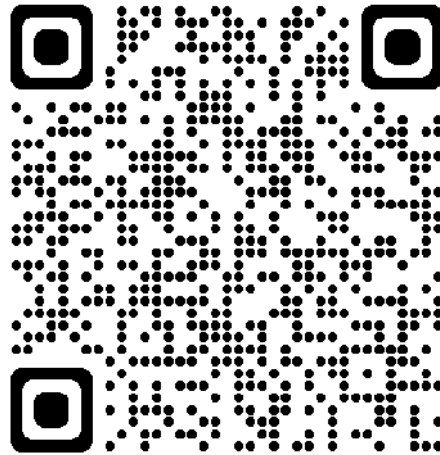
#### **अन्य किसानों के लिए संदेश:**

इनका मानना है कि यदि हम कोशिश करते हैं तो "कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती" वैसे ही यदि पूरी ईमानदारी से आप समय रहते जो समेकित कृषि प्रणाली है उसको अपनाते हैं अपनी खेती के लिए या जैविक खेती हो या बात करें हम प्राकृतिक खेती की तो निश्चित रूप से ही किसान भाइयों को लाभ मिलेगा और हमारा संदेश यही है कि सभी लोग रसायन मुक्त खेती करके स्वयं का, समाज का एवं परिवार का जो बजट है या लागत है वह भी कम कर सकते है एवं स्वास्थ्य में भी सुधार होगा।

# “द पहाड़ी एग्रीकल्चर”

## ई-पत्रिका

‘पर्वतीय कृषि की ऑनलाइन मासिक पत्रिका’



संपर्कसूत्र:

[pahadiagriculture@gmail.com](mailto:pahadiagriculture@gmail.com)

<https://pahadiagromagazine.in>

[www.pahadiagromagazine.in](http://www.pahadiagromagazine.in)